इकाई 3
आधुनिक वस्त्रों का इतिहास

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप निम्नलिखित में समर्थ होंगेः–

- औद्योगिक क्रांति के इतिहास को समझने और उसका वर्णन करने में
- औद्योगिक क्रांति के दौरान फैशन पर यांत्रिक आविष्कारों और तकनीकी विकासों के प्रभावों का वर्णन करने में
- भारत पर औद्योगिक क्रांति के प्रभाव को समझने में
- फैशन पर विश्व युद्धों के प्रभाव का पता लगाने में
- बीसवीं शताब्दी से इस सहस्राब्दि तक भारतीय फैशन के उद्भव का पता लगाने में
- भारत में फिल्मों तथा फैशन के बीच संबंध को समझने में

जिन आस्थाओं के साथ मैं पली और बड़ी हुई हूं अर्थात् पशुओं को सम्मान देने तथा प्रकृति के विषय में जागरूक होने, यह समझने कि हम अन्य प्राणियों के साथ ही इस उपग्रह की साझेदारी करते हैं, इन्होंने मुझ पर गहरा प्रभाव छोड़ा है।''

– स्टेला मैक कार्टने

3.1 औद्योगिक क्रांति

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक, समाज एक ओर राजसी और कुलीन तथा दूसरी ओर श्रमिकों और किसानों के बीच विभाजित हो चुका था। फैशन का उद्भव फ्रांसीसी राजसी दरबारों से हुआ जिनमें अत्यधिक उत्कृष्ट वस्त्र शामिल थे जैसे रेशम, साटिन, लेसेस जो पूर्णतः हाथ द्वारा ''सिलाईकारों, अथवा वस्त्र निर्माताओं द्वारा तैयार किया गया था। इनकी विशिष्टता इस तथ्य के कारण भी थी कि वस्त्रों को व्यैक्तिक ग्राहक के माप के अनुसार तैयार किया जाता था। इसकी तुलना में, गरीब लोग साधारण कपड़े के स्वयं द्वारा बनाए गए वस्त्र पहनते थे जिनमें अधिक सजावट नहीं होती थी।

औद्योगिक क्रांति ने समाज में आमूलचूल परिवर्तन किया तथा इसे तेजी के साथ और मूलतः रूपांतरित कर दिया। जीवन का हर पहलू इससे प्रभावित हुआ जिसमें वस्त्र और पोशाकें भी शामिल थीं। इसने अल्प मात्रा में वस्त्र तैयार किए जाने से व्यापक पैमाने पर उत्पादन और प्रयोग के लिए तैयार वस्त्रों के निर्माण की ओर रूपांतरण किया। अनेक नई खोजें की गई जिनके उपरांत पेटेंट प्रणाली आरंभ हुई जिसने औद्योगिक कताई और बुनाई केन्द्रों के मशीनीकरण के माध्यम से बड़े पैमाने पर विकास हासिल किया। जबकि इन घटनाक्रमों ने वस्त्र उत्पादन की प्रक्रिया को तेज बनाया, इनके परिणामस्वरूप रंग भी उत्पन्न हुए। इनके कार्यान्वयन को रोकने के लिए कानून पारित किए गए जिसकी वजह यह डर था कि मशीनीकरण के परिणामस्वरूप

चित्र 3.1 घर में ऊन की कताई का चित्रात्मक प्रतिरूपण

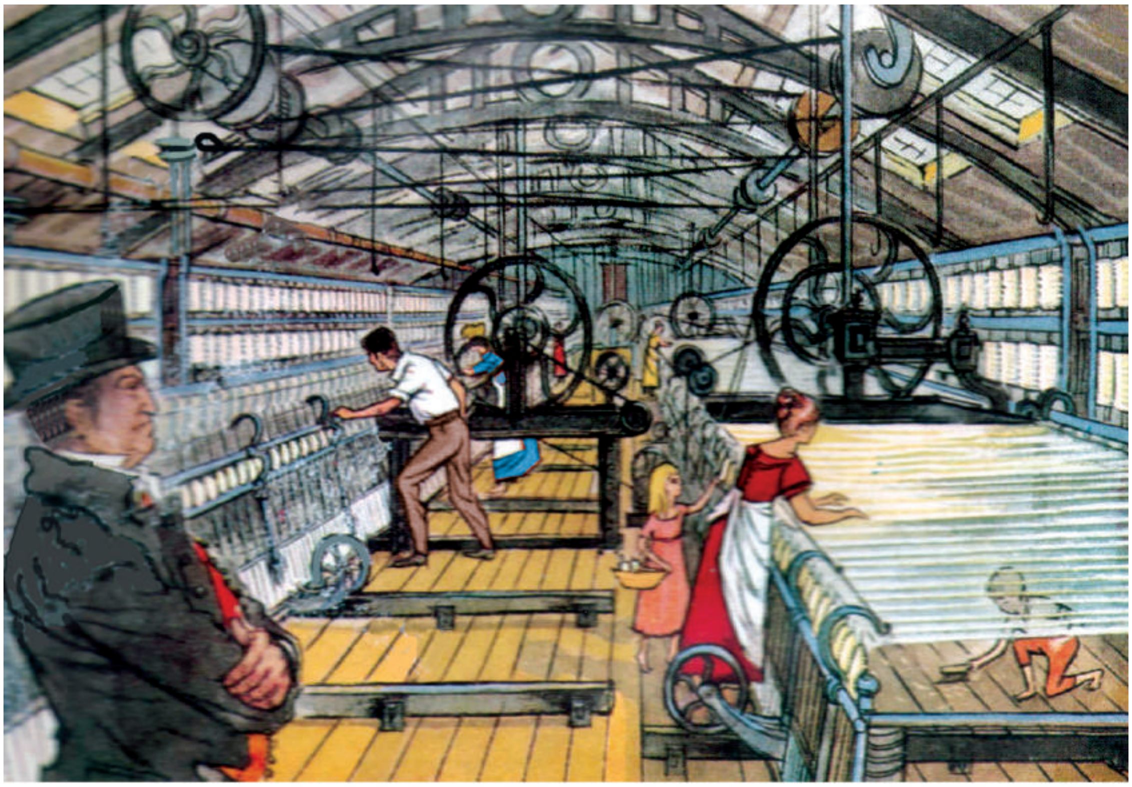

चित्र 3.2 कारखाने में मशीनीकरण का चित्रात्मक प्रतिरूपण

बड़े पैमाने पर बेरोजगारी उत्पन्न हो जाएगी जिसके कारण आम लोगों का जीवन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होगा।

लेकिन, धीरे–धीरे मध्यम वर्ग का प्रत्यक्षतः विकास होने लगा था तथा वे लोग अब व्यापार और उद्योग में सक्रिय रूप से भागीदारी करने लगे थे तथा आर्थिक दृष्टि से मजबूत बन रहे थे। उनके पास बेहतर जीवन–शैली से जुड़ी वस्तुओं पर व्यय करने के लए पैसा उपलब्ध था। अपनी समृद्धता को दर्शाने के लिए परिधान हैसियत के प्रतीक बन गए थे।

स्पेन के उपनिवेशों में नए बाजारों के खुलने, भारतीय कपास के बहुतायत में आयात होने तथा फ्रांस की रेशम मिलों के विस्तार ने भी सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन में योगदान दिया। ब्रिटिश वस्त्र उद्योग मुख्य रूप से चौड़ा कपड़ा उत्पादित करता था। मैनचेस्टर ने एक 'कस्बे के बाजार' से स्वयं का रूपांतरण 'कपास उद्योग के केन्द्र' के रूप में कर लिया था जबकि नोर्विच ऊन और कॉन्वेंट्री रेशम का उत्पादन करता था। मशीनीकरण के कारण मूल्यों में आई गिरावट ने इंग्लैंड के लिए विश्व बाजार को खोल दिया।

कपास ने विशिष्ट वस्त्रों के उत्पादन के साथ जैसे लॉन, गॉज और मखमल (भारतीय नाम मलमल) वस्त्रों तथा उसके उपांगों में क्रांति पैदा कर दी। कपास के प्रयोग का एक अप्रत्याशित प्रभाव दास–व्यापार था। सूती कपड़ा अफ्रीका को भेजा जाता था जहां इसका विनिमय वहां की स्थानीय वस्तुओं के साथ होता था, जिन्हें अमेरिका के नए राज्यों को ले जाया जाता था जिसके परिणामस्वरूप पोत कच्चे कपास के साथ वापस लौटते थे।

3.2 औद्योगिक क्रांति के दौरान मशीनी आविष्कार

अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में, ऊन उद्योग से संबधित अधिकांश कार्य लोगों के घरों में ही किया जाता था। कुछ आविष्कारों ने स्थिति को पूरी तरह से बदलकर रख दिया।

जॉन के द्वारा 1933 में अविष्कृत 'फ्लाइंग शटल' ने करघे के कार्यकुशलता में वृद्धि की जिसने उच्च गति के साथ वस्त्र के उत्पादन में वृद्धि के प्रति योगदान दिया। चूंकि के का आविष्कार धागों का प्रयोग अत्यंत तेजी से करता था, इसने सूत कातने वालों के लिए अधिक रोजगार सृजित किया क्योंकि पुरानी शैली के करघे को धागों की निरंतर आपूर्ति करने के लिए अनेक लोगों की आवश्यकता होती है।

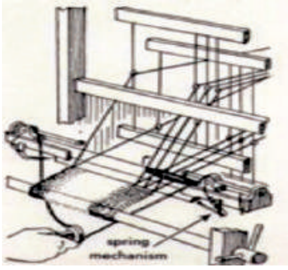

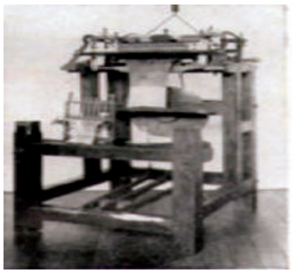

चित्र 3.3 स्प्रिंग तंत्रों के माध्यम से फ्लाइंग शटल साइड–टु–साइड पास किया करती थी
चित्र 3.4 अठारहवीं शताब्दी की बुनाई मशीन

वर्ष 1764 में, जेम्स हग्रीवेज ने 'स्पिनिंग जेनी' का आविष्कार किया जो एक बार में 30 धागों को बुन सकती थी। इसने अन्य लोगों में असंतोष पैदा किया जिन्हें डर था कि जो मशीन 30 लोगों का काम कर सकती है वह बेरोजगारी पैदा कर देगी तथा इसे तोड़ने के प्रयास किए गए। परंतु इसकी प्रगति रोकी न जा सकी तथा कुछ ही समय में यह मशीन हर स्थान पर पाई जाने लगी।

सूत–कताई के फ्रेम तथा 'दि म्यूल' के नाम से जानी जाने वाली मशीन ने कताई की गति में वृद्धि की तथा यह पहले की तुलना में अधिक महीन और मजबूत धागा बना सकती थी।

कपास वस्तुओं के लिए बढ़ती हुई मांग के साथ कपास की सफाई की आवश्यकता में भी वृद्धि हुई। **एली व्हाइटनी** ने एक स्वचालित ओटाई मशीन का आविष्कार किया और उसे पेटेंट किया जो दिखने में साधारण थी, परंतु छोटे रेशे वाले कपास फाइबरों से कपास के बीज अलग करने में प्रभावशाली थी। 1804 में, डिजाइनर **जोसफ मैरी जैक्वार्ड** के नाम पर बनाए गए जैम्वार्ड करघे ने बुने वस्त्र पैटर्नों में परिष्करण और जटिलता की क्षमता का प्रदर्शन किया। यह स्वचालित रूप से कार्डो के स्ट्रिंग पर छिद्रो के पैटर्नों की 'रिकार्डिंग' करते हुए रेशम करघे पर धागों के रैप और रैफ्ट को नियंत्रित करता था जिसके फलस्वरूप आज के कम्प्यूटरीकृत पंच–कार्ड का विकास हुआ है।

एलियस होव द्वारा आविष्कृत सिलाई मशीन को 1851 में **आइजैक सिंगर** द्वारा आगे और परिष्कृत

किया गया। इसने हाथ से सिले जाने वाले वस्त्रों को एक उद्योग के रूप में रूपांतरित किया क्योंकि उनका उत्पादन एक आसान और तेज प्रक्रिया बन गया था। बाद में, 19वीं शताब्दी में इसके साथ एसेम्बली लाइन प्रणाली भी आई जिसके फलस्वरूप व्यापक उत्पादन और आकारों का मानकीकरण हुआ तथा पहनने के लिए तैयार वस्त्र डिपार्टमेंटल स्टोरों में बेचे जाने लगे।

निरंतर सक्रिय होते वैज्ञानिक अनुसंधान ने रंगों और डाई में व्यापक प्रगति की। सर आइजैक न्यूटन ने स्पेक्ट्रम के मौलिक रंगों को वियोजित किया जो थे : लाल, पीला और नीला। जोहान **टोबलस मेयर** ने विभिन्न प्राथमिक शेडों को प्राप्त करते हुए रंग के मिश्रण के सिद्धांत का वर्णन किया जिसने वस्त्र विनिर्माताओं को अनेक रंग संयोजनों के साथ टोनों और शेडों की नई संभावनाएं प्रदान की। 1856 में **सर विलियम पेर्किन** ने पहली सिंथेटिक डाई का आविष्कार किया।

3.3 भारत पर औद्योगिक क्रांति का प्रभाव

भारत ब्रिटिश राज में अंतरण के परिणामस्वरूप कपास बड़ी मात्रा में इंग्लैंड को भेजा गया। प्राचीन काल की भांति इस अवस्था में भी भारत की अर्थव्यवस्था बड़े पैमाने पर अपने वस्त्रों पर ही निर्भर थी। औद्योगिक क्रांति के दौरान कताई और बुनाई का मशीनीकरण होने के साथ ही कपास और नील की वैश्विक मांग में वृद्धि हो गई।

अठारहवीं शताब्दी तक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया ने भारतीय किसानों और शिल्पियों को उनके स्वयं के कपड़ों को बुनने और सिलने से टोकना आरंभ कर दिया। ब्रिटिश सोलहवीं शताब्दी से **भारत के** साथ व्यापार कर रहे थे। भारत में एक समृद्ध वस्त्र निर्यात उद्योग विद्यमान था। परंतु ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का अत्यंत शक्तिशाली आर्थिक–राजनीतिक प्रभाव था तथा उन्नीसवीं शताब्दी तक उसने भारत को ब्रिटेन में विनिर्मित उत्पादों और फ्रैब्रिक के बदले में इंग्लैंड को कच्चा माल (अर्थात कपास) निर्यात करने के लिए विवश किया। भारतीय किसानों को कपास उगाने तथा उसकी डाइ करने के लिए स्थानीय रूप से भाड़े पर लिया गया तथा इस प्रथा को 'नील दासता' प्रथा कहा जाता है। कभी समृद्ध रहा कृषक और शिल्पकार वर्ग इससे बुरी तरह प्रभावित हुआ; हजारों कुशल शिल्पकार बेरोजगार हो गए। स्थानीय उद्योगों की ब्रिटेन की विनिर्माण और विपणन आवश्यकता के अनुसार पुनर्संरचना की गई। 1850 के दशक में जब भारत ने बंबई और अहमदाबाद में अपना स्वयं का औद्योगिक वस्त्र व्यवसाय विकसित किया तो पारंपरिक हाथ की बुनाई का उद्योग और भी अधिक प्रभावित हुआ।

इस दौरान, उपनिवेशवाद शासन के दौरान पारंपरिक राजसी और मंदिर संरक्षण में कमी आई क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत की भूमिका विश्व में वस्त्रों के विशालतम निर्यातक से बदलकर इंग्लैंड में बने वस्त्रों के सबसे बड़े आयातक के रूप में कर दी थी। देश को व्यवस्थित ढंग से लूट लिया गया क्योंकि भारतीय घरेलू बाजार भारतीय वस्त्रों की नकल वाले सस्ते कपड़ों से पट गए थे जिन्हें लंकाशायर में उद्योगों द्वारा निर्मित किया गया था। उन बुनकरों पर अत्यंत भारी कर लगाए गए जो हाथ से बने कपड़े के निर्माण में विशेषज्ञता रखते थे जिनके परिणामस्वरूप वस्त्र बुनाई केन्द्रों जैसे सूरत और मुर्शिदाबाद के बुनकरों ने अत्यंत विपत्तियों का सामना किया। कुछ वस्त्र बुनाई तकनीकें विलुप्त हो गई थीं।

राष्ट्र की मिलों द्वारा की गई प्रगति से ब्रिटिश महिलाओं के परिधान लाभान्वित हुए जिनका कच्चा माल ईस्ट इंडिया के उपनिवेशों द्वारा उपलब्ध कराया जाता था। अपनी उत्कृष्ट गुणवत्ता, किफायत और टिकाऊपन के कारण कपास की सबसे ज्यादा मांग थी। सुंदर भारतीय प्रिंट जिन्हें छींटे कहा जाता था (जिसे भारतीय छींट से लिया गया है जिसका तात्पर्य है वर्षा की बूंदों की फुहार) कोमल मखमल और कैलिको वस्त्र इंग्लैंड में अत्यंत लोकप्रिय थे। फ्रांस ने भी प्रिंटेड, पेंटेड अथवा डाई कैजिकोज़ में अत्यधिक रुचि दर्शाई जिन्हें 'इंडियाजीज़' कहा जाता था। संलिष्ट पेसले डिजाइनों तथा श्रमसाध्य बुनाई से तैयार की गई कश्मीर की कानी शॉले यूरोप में अत्यंत विलासितापूर्ण मानी जाती थीं। वेस्टइंडीज के अत्यंत उत्कृष्ट परिधानों तथा भारत और सीलोन के नवाबों के विशिष्ट वस्त्रों से प्रेरणा पाकर ब्रिटिश वस्त्र भी विदेशी उपनिवेशों द्वारा फैशन के रूप में तैयार किए गए। यह उल्लेखनीय है कि वे शब्द जो आधुनिक वैश्विक वस्त्र शब्दकोश का भाग हैं, जैसे छींट, मुस्लिन, कैलिको खाकी, कमरबंद, जोधपुर्स और पजामा, भारतीय मूल के शब्द हैं।

अभ्यास 3.1

निम्न का मिलान करें:

करघे को डिजाइन किया जो संश्लिष्ट बुनाई सृजित कर सकता था तथा बाद में कम्प्यटरीकत पंचकार्ड में विकसित हआ।	जॉन टोबियस मेयर
प्रथम सिंथेटिक डाई का अविष्कारक प्रथम घरेल सिलाई मशीन का आविष्कारक	आइजैक सिंगर जोसफ मैरी जैम्वार्ड
अनेक रंगों के शेड प्राप्त किए जिन्होंने वस्त्र विनिर्माताओं को अनेक रंग संयोजन उपलब्ध कराए	एली वहइटने
कपास के लिए एक स्वचालित ओटाई मशीन का आविष्कार और पेटेंट किया	जॉन के
'फ्लाइंग शटल' मशीन का आविष्कार किया जिसने उच्च गति से वस्त्र निर्माण में वद्धि की	सर विलियम पेर्किन

रिक्त स्थान भरिए

1. भारतीय किसानों को कपास उगाने तथा उसे नील में डाई करने के लिए एक दमनकारी प्रणाली के अंतर्गत विवश किया गया जिसे ____________ कहा जाता है।
2. ____________ एक लोकप्रिय भारतीय प्रिंट जिसमें छोटे फूल होते थे, जिसका प्रयोग यूरोपीय परिधानों के लिए किया जाता था।
3. कपास ने विशिष्ट वस्त्रों जैसे ____________, ____________ और ____________ के उत्पादन के साथ यूरोपीय वस्त्र और उपांग उद्योग में क्रांति ला दी।
4. मलमल ____________ फैब्रिक के लिए भारतीय नाम है।
5. हाथ से बनाए जाने वाले वस्त्रों में विशेषज्ञता रखने वाले बुनकरों पर कठोर कर लगाए गए जिसके फलस्वरूप कुछ वस्त्रों में बुनाई तकनीकें ____________ हो गईं।

क्रियाकलाप

राष्ट्र की मिलों द्वारा की गई प्रगति से ब्रिटिश महिलाओं के परिधान लाभान्वित हुए जिनकी कच्ची सामग्री विशेषकर कपास ईस्ट इंडिया उपनिवेशों द्वारा उपलब्ध कराया जाता था।

यह क्रियाकलाप छात्रों को भारतीय मूल के उन प्रिंटों, बुनाई और परिधानों की पहचान करने में समर्थ बनाएगा जो औद्योगिक क्रांति के दौरान लेकर आज तक भारी मांग में हैं।

1. इतिहास की पुस्तकों का अवलोकन करें तथा भारतीय रूपरंग की परिधान और शॉले पहनी यूरोपीय महिलाओं के चित्रों को पहचान करें।
2. शीर्षक में दिए गए वस्त्र के प्रकार, प्रिंट बुनाई और परिधान का नाम लिखें।
3. चर्चा करें कि क्या वह नाम फैशन शब्दकोश में आज भी प्रयोग में है।

3.4 फैशन पर विश्व युद्धों का प्रभाव

हालांकि युद्ध और फैशन आपस में संबंधित नहीं प्रतीत होते हैं, युद्ध जीवन–शैली को प्रभावित करते हैं तथा इनके अधिक समय तक चलने के कारण ये लोगों के बाहरी दिखाव–बनाव को भी प्रभावित करते हैं। विश्व युद्धों तथा उनके बीच की अवधि ने दीर्घकाल तक बने रहने वाले प्रभावों के साथ सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन भी किए।

3.4.1 प्रथम विश्व युद्ध (1914–1918)

युद्ध के दौरान, पुरुष युद्ध के मोर्चों पर डटे थे जिसके फलस्वरूप महिलाओं को नई भूमिकाएं और उत्तरदायित्व निभाने के लिए विवश होना पड़ा। राष्ट्र के युद्धसंबंधी गंभीर मनोयोग ने आकर्षक पोशाकों के संबंध में लोगों की रुचि में काफी कमी की। अनेक देशों ने अपना व्यापार बंद कर दिया।

गवर्नेस और टाइपिस्टों के रूप में महिलाओं की पारंपरिक भूमिका में परिवर्तन हो गया। सामाजिक आयोजनों का स्थान परिचर्या ने ले लिया। पुरुषों और महिलाओं, दोनों ही के लिए युद्ध से पूर्व की अवधि में सामग्री, सजावट और तड़क–भड़क के संदर्भ में प्रचलित विस्तृत फैशन का स्थान साधारण शैलियों द्वारा ले लिया गया।

मुद्रा के अवमूल्यन के परिणामस्वरूप समाज में महिलाओं की नई भूमिका प्रभावित हुई। अधिक गतिशीलता और कम हड़बड़ाहट की आवश्यकता के फलस्वरूप स्कर्टें टखनों से ऊपर उठते हुए आधी पिंडलियों तक ऊपर उठ गईं। इसी व्यवस्था के फलस्वरूप ऊंचे बूटों के स्थान पर लो–कट जूतों को अपनाया गया। जब नौकरियों में अधिक अनुशासन आने लगा, तो कपड़े वर्दी–नुमा हो गए जो एक–समान दिखाई पड़ते थे। गोला–बारूद के कारखानों में महिलाएं, ब्लाउजों, लंबे गाउनों अथवा पतलूनों से मिलकर बनी वर्दियां पहनती थीं। गहरे रंग के कपड़े सर्वत्र दिखाई पड़ते थे।

चित्र 3.5 प्रथम विश्व युद्ध के दौरान महिलाओं की पोशाकें

3.4.2 युद्धों के बीच की स्थिति (1919–1939)

युद्ध द्वारा उत्पन्न किए गए संचयनों ने पूर्व में विद्यमान परपंराओं तथा समाज में होने वाली नई घटनाओं के बीच अंतर पैदा कर दिया। अंततः 1920 में मतदान करने का अधिकार प्राप्त करने के माध्यम से महिलाओं की स्वाधीनता और भी सुदृढ़ हुई।

पॉल पोइरेट जिसे प्रथम कोट्यूरियर (कोट्यूर फैशन का डिजाइनर) के रूप में जाना जाता है, उस समय एक शैली–प्रवर्तक बन गया जब उसने महिलाओं के बदन पर कसी हुई कुर्तियों से आजाद कर दिया। महिलाओं के वस्त्र अब लंबाई अथवा आराम के संदर्भ में किसी सीमा में नहीं बंधे हुए थे। धारियों, कुरतियों और आवरग्लास सिलुएटों वाली लंबी पोशाकों का स्थान अब साधारण चोलियों और कमर पर नीचे बांधे जाने वाली पोशाकों ने ले लिया था। इस शैली को **फ्लॉपर लुक** कहा जाता था जिसका निर्माण 1925 में डिजाइनर जीन पेटोऊ द्वारा किया गया था तथा यह एक छरहरा, आयताकार सिलुएट था जिसमें उपांगों के तौर पर महीन कशीदाकारी और मोतियों की एक लंबी लड़ी लगाई गई थी।

चित्र 3.6 1920 की फ्लैपर पोशाक

हालांकि परम्परागत वस्त्रों का प्रचलन जारी रहा, 1920 के दशक में पहनने के लिए तैयार (आरटीडब्ल्यू) वस्त्र भी मजबूती के साथ सुस्थापित हो गए। बीसवीं शताब्दी के 'आमोद–प्रमोदपूर्ण वर्षों' में उत्साही जीवनशैली के फलस्वरूप पुरुषों और महिलाओं के लिए अनौपचारिक पोशाकों का अभ्युदय हुआ। तैराकी, भ्रमण और जैज–नृत्य ने पूर्व की शांत जीवनशैली को एक सक्रिय जीवनशैली में परिवर्तित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप औपचारिक पोशाकों से खेलकूद की पोशाकों की ओर रूपांतरण हुआ। टेनिस जैसे खेलों ने सफेद कपड़े से बने वस्त्रों का प्रचलन किया जिन्हें **टेनिस व्हाइट** कहा जाता था। इसके साथ–साथ पुरुषों के परिधानों में भी अनौपचारिकता का समावेश हो गया था जिनमें आरामदेह स्थिति तथा जवानी के जोश पर विशेष बल प्रदान किया गया था। जैसाकि महिलाओं के मामले में था, खेलों के अत्यंत व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप 1935 में पहली लाकोस्टे ब्रांड शर्ट बाजार में आई। अब अवकाश का अर्थ सुदूरवर्ती स्थानों पर भ्रमण करना हो गया था जो पृथक परिधानों जैसे पतलूनों, सूटों और रैप स्कर्टों का सृजन करने का सही समय था।

1920 के दशक में प्रगति के साथ ही उत्पन्न हुए सुखाभास ने 1929 में वॉल स्ट्रीट में आई भारी मंदी के कारण दम तोड़ दिया। जैसे–जैसे स्टॉक मार्केट में गिरावट आती रही, स्कर्ट की लंबाई में भी तदनुरूपी वृद्धि होती रही। यूरोप में आर्थिक आपदा का विस्तार होने से बेरोजगारी और महंगाई पैदा हुई, और महंगे कोट्यूर परिधान व्यावहारिक रूप से विलुप्त हो गए। अधिकांश महिलाओं के पास किफायत के साथ शैली का संतुलन करने के लिए अपने वस्त्र बनाने के प्रयोजनार्थ अपनी सिलाई मशीनों का प्रयोग करना पड़ा। यहां तक कि शाम के परिधानों के लिए सूत का प्रयोग किया जाने लगा। 1930 के दशक में डिजाइनर परिधानों के अनुकृतियां तैयार करने के लिए सस्ती व्यापक रूप से उत्पादित पोशाकें और प्रयोग के लिए तैयार पेपर पैटर्न लोकप्रिय हो गए। महिलाओं के लिए बने–बनाए सूट एक आवश्यकता बन गए।

इस अवस्था में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने आयातित वस्त्रों पर 90 प्रतिशत कर लगा दिया। चूंकि परिधान सामग्री तथा पेपर पैटर्न शुल्क–मुक्त थे, इसके परिणामस्वरूप विभिन्न शैलियों में तैयार किए गए साधारण प्रोटोटाइपों पर आधारित परिधानों का विकास हुआ जिनमें सस्ती सामग्री का प्रयोग किया गया था। चूंकि फ्रांसीसी फैशन युद्ध के दौरान कुछ अलग–थलग पड़ गया था, अमरीकी डिजाइनरों ने समन्वित परिधानों का विकास किया जिन्होंने उनके पहने वालों को मिश्रण और मिलान करने की स्वतंत्रता प्रदान की जिसके फलस्वरूप उनका अपना स्वरूप उभरकर सामने आया।

युद्धों के बीच की अवधि के दौरान तीन महिला डिजाइनरों का अधिपत्य था : **गैब्रीली 'कोको' चैनल, मेडेलाइन वियोनेट** और **एल्सा शियापरेली।**

- **मेडेलाइन वियोनेट** 'बायस ग्रेन' (45 अंश का कोण जिस पर वस्त्र को मोड़ा और लपेटा जाता है) पर आकर्षक परिधानों का निर्माण किया जिसे शरीर पर मोड़ा और बांधा जाता था। उन्हें 'कोउल नेक' और 'हाल्टर नेक' का सृजक माना जाता है।
- **कोको चैनल** के नवीन महिलाओं के लिए डिजाइन उनकी अत्यधिक व्यावहारिक समझ से उत्पन्न हुए थे। उन्होंने महिलाओं के लिए स्वेटरों, जर्सी ड्रेसों, ब्लेजरों, चेन वाले बॉक्सी सूटों और कमर पर ऊपर बांधने वाले ट्राउजरों के साथ औपचारिक शैली का सृजन किया।

उन्होंने को अपने सांकेतिक संयोजित '**Cs**' संप्रतीक को डिजाइन किया तथा किफायती परिधान आभूषणों लोकप्रिय बनाया।

- **एल्सा शियापरेली** के पास डिजाइन करने के लिए एक कलात्मक दृष्टिकोण था जिसमें वे अननुमेय काल्पनिक मोटिफों का प्रयोग करती थी जैसे लोबस्टर्स, स्कल्स, चाबियां तथा साथ ही हास्य–विनोद की एक्सेसरीज़ और ट्रिक्स। उस समय विद्यमान 'स्यूरिएलिज़्म' नामक कला आंदोलन से प्रभावित होकर उनके वस्त्र प्रायः चाक्षुक भ्रम के आनंददायी उपयोग का प्रयोग किया करते थे जिन्होंने उन्हें एक ऐसा डिजाइनर बना दिया जिसका अनुकरण अनेक दशकों तक किया जाता था। उन्होंने शोल्डर–पैडों का प्रयोग करते हुए महिलाओं की जैकेटों के कंधों को अधिक चौड़ा बनाया।

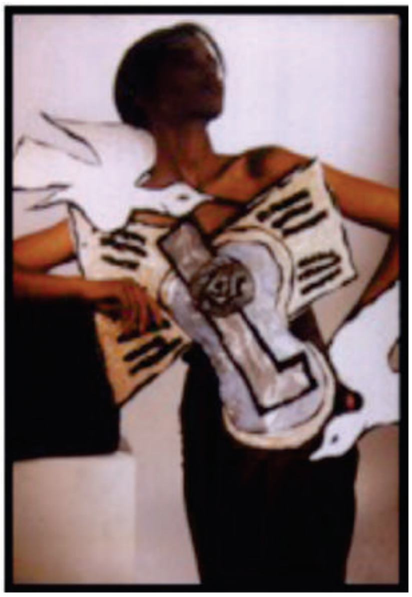

चित्र 3.7 (ऊपर से नीचे) मेडेलाइन वियोनेट गैब्रीली 'कोको' चैनल और एल्सा शियापरेली की रचनाएं

3.4.3 **द्वितीय विश्व युद्ध** (1939–1945)

युद्ध ने पुनः वस्त्र उद्योग को उसी प्रकार प्रभावित किया जैसा कि इसने जीवन के सभी अन्य पहलुओं को किया था। कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि इसने कोट्यूर को प्रतिबंधित कर दिया है जिसका मुख्य स्थान पेरिस हुआ करता था। जर्मनी ने गंभीरता के साथ फ्रांसीसी कोट्यूर को बर्लिन और वियाना स्थानांतरित करने की योजना बनाई जिनमें से किसी भी शहर में फैशन की परंपरा नहीं थी। पेरिसीय कोट्यूर को उसकी स्वायत्तता बनाए रखने की अनुमति प्रदान करने के लिए डिजाइनरों ने एक अत्यंत प्रति–आक्रामक अभियान आरंभ किया।

जबकि पेरिसीय फैशन विश्व सुसुप्तावस्था की स्थिति में था, द्वितीय विश्व युद्ध ने अमरीकी फैशन उद्योग को फलने–फूलने का अवसर प्रदान किया। अमरीकी डिजाइनर **क्लेयर मैककार्डेल** ने स्पोर्ट्सवीयर का सृजन किया जो व्यापक विनिर्माण के अनुकूल थे। इस अमरीका में काफी फला–फूला तथा धीरे–धीरे यूरोप में भी फैल गया। अमरीका ने अन्य वाणिज्यिक दृष्टि से सफल डिजाइनरों की हू–ब–हू रचनाएं तैयार करने के लिए अधिकार भी खरीद लिए।

वस्त्र उद्योग पर मितव्ययिता संबंधी उपाय अर्थात् परिधानों को विनियंत्रित करने वाले विनियम

अधिरोपित किए गए। लोगों ने पुराने कपड़ों को पुनः प्रयोग में लाने का प्रयास भी किया।

i. **वस्त्र उपभोग** – एक कोट के लिए 4 मीटर से अधिक तथा एक ब्लाउज के लिए एक मीटर से अधिक वस्त्र का प्रयोग नहीं किया जा सकता था।

ii. **डिजाइन की सुविधा अर्थात्** स्कर्टों को बगल की दरारों के साथ डिजाइन किया जाता था ताकि वह मोटरसाइकिल चलाने में सुविधाजनक रहे।

iii. **वस्त्र के विवरणों का मानकीकरण** अर्थात् कमर की बेल्ट की चौड़ाई, जेबों की संख्या, सूटों का रंग।

iv. **उपांग** आराम और टिकाऊपन के लिए चौड़ी लकड़ी से बनी फन्नी के आकार की हीलें, युद्ध के समय की आकस्मिकताओं के लिए सामग्री को लाने–ले जाने के लिए कंधे के बैग।

इस दौरान, इंग्लैंड में 1941 के बाद से लागू किए गए वस्त्र निर्बंधनों के मापदण्डों के अंतर्गत आकर्षक परिधान डिजाइन करने के लिए एडवर्ड मोलीनेयक्स, हार्डी एमीज़, नोर्मन हार्टनल जैसे डिजाइनरों तथा अन्य से मिलकर एक समिति का गठन किया गया। यह समूह व्यापक उत्पादन के लिए व्यावहारिक और किफायती डिजाइनों जिन्हें **उपयोगितापूर्ण परिधान** कहा जाता था, का चयन करने के लिए उत्तरदायी था जिसमें महिलाओं की **विक्ट्री सूट** नामक प्रसिद्ध पोशाक भी शामिल थी।

युद्ध की समाप्ति के साथ ही किफायत का दौर भी समाप्त हो गया। स्वाधीनता के पश्चात्, युद्ध के बाद की अवधि वस्त्र उद्योग के पुरूद्धार तथा सुरुचिपूर्णता के पुनर्जन्म की साक्षी रही है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को मजबूत बनाया गया। व्यावहारिक दिन के परिधानों तथा ऐश्वर्यपूर्ण संध्याकालीन गाउनों के प्रयोग में वृद्धि हुई। विशिष्ट वस्त्र–दुकानों की स्थापना ने डिजाइनर सृजनों की पहुंच को आम जनता तक और अधिक सुलभ बना दिया। वर्ष 1947 में फ्रांसीसी डिजाइनर क्रिश्चन डिओर द्वारा तैयार की गई छोटी कमर वाली, पूर्ण स्कर्ट तथा छोटी जैकेट की खूबियों वाले अत्यंत आकर्षक परिधान, 'न्यू लुक' ने पेरिस को एक बार फिर कोट्यूर फैशन के मजबूत आधार के रूप में स्थापित कर दिया।

चित्र 3.8 द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पहना जाने वाला वीमेंस विक्ट्री सूट

चित्र 3.9 क्रिश्चन डिओर का 'न्यू लुक'

अभ्यास 3.2

रिक्त स्थान भरिए:

1. उच्च फैशन का फ्रांसीसी नाम है ____________
2. पहनने के लिए तैयार वस्त्रों का फ्रांसीसी नाम है ____________
3. टेनिस जैसे खेलों के लिए पहने जाने वाले सफेद वस्त्रों से बने परिधान ____________ कहलाते थे।
4. आम जनता पर द्वितीय विश्व के दौरान वस्त्रों पर अधिरोपित निर्बंधनों ____________ को कहा जाता था।
5. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान स्त्रियों का परिधान ------------ कहलाता था।
6. ____________ डिजाइनों ने महिलाओं को उनके वस्त्रों का मिश्रण और मिलान करने की आजादी दी।

निम्नलिखित का मिलान कीजिए:

व्यावहारिक सुरुचिपूर्ण परिधान प्रथम कोट्यूर डिजाइन वस्त्रों पर बायस ग्रेन का प्रयोग	ऐल्सा शिया परेली कोको चैनल मैडेलिन विओनेट
वस्त्रों पर कल्पनाशील मोटिफ	क्रिश्चन डिओर
1920 के दशक के फ्लैपर लुक का सृजक	पॉल पॉइरेट
न्यू लुक	जीन पटोऊ

3.5 भारतीय फैशन का उद्भव

पारंपरिक भारतीय वस्त्रों की न केवल देश के भीतर बल्कि समूचे विश्व में एक विशिष्ट पहचान है। इसके अलावा, भारतीय पोशाकों की एक अद्भुत विशेषता है कि वह किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र का संकेत भी प्रदान करती है। बीसवीं शताब्दी में भारतीय फैशन का इतिहास देश के भीतर व्याप्त सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक परिवेश तथा साथ ही विदेशों में परिवर्तित होती फैशन की प्रवृत्तियों के प्रासंगिक और संबद्ध रहा है। इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि भारतीय विरासत और परंपरा इतनी गहरी है कि नए प्रभाव उसमें केवल थोड़ा सा ही परिवर्तन ला सकते हैं तथा हमारी संस्कृति में कोई आधारभूत बदलाव नहीं आ सकता है। इस खण्ड में बीसवीं शताब्दी से भारतीय फैशन के उद्भव के विषय में जाना गया है।

1920 से 1990 की अवधि

शताब्दी के बदलने के साथ, सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य ऐसा था कि ब्रिटिश शासन भारत में दृढ़ता के साथ स्थापित हो चुका था। एक ओर, पुरुष परिधानों में पश्चिमी फैशन का प्रभाव बैगी पतलूनों, बटनदार कमीजों, जैकेटों, टोपों, वॉकिंग स्टिक्स आदि में दिखाई पड़ता था जिन्हें कुछ भारतीयों द्वारा कार्यस्थल पर पहना जाता था। तथापि, कुर्ते और पगड़ी के साथ धोती और पजामा अधिकांश लोगों के लिए परिधान की प्रमुख मदें बनी रहना जारी रहीं जो प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय पहचान की द्योतक थीं। महिलाएं ऊंचे कॉलर और तीन–चौथाई बांह वाले ब्लाउज के साथ साड़ी पहनती थीं जिसे बाएं कंधे पर एक जड़ाऊ के साथ पिन किया जाता था। उपनिवेशी सरकार के लिए कार्य करने वाले लोगों की पत्नियां पहली स्त्रियां थीं जो घरों से बाहर निकली और ब्रिटिशों के साथ मिलने–जुलने लगीं। बंगाल के ब्रह्म समाज की महिलाओं ने सबसे पहले पश्चिमी शैलियों को अपनाया था। जबकि क्षेत्रीय परिधानों की विविधता के साथ साड़ी पहनने की परंपरा जारी रही, महिलाओं ने साड़ी–ब्लाउज के साथ प्रयोग करना आरंभ कर दिया। सिले–सिलाए साड़ी–ब्लाउजों ने अंग्रेजी ब्लाउजों की नवीनतम शैलियों का अनुकरण किया जिनमें कफ्स, लेसेस और चुनटें होती थी तथा साड़ी के 'पल्ले' को कंधे पर पिन के साथ लगाया जाता था। अंग्रेजों द्वारा पहनी जाने वाली लंबी धारीदार स्कर्टों ने साड़ियों के साथ पहने जाने वाली सिले–सिलाए पेटीकोटों को प्रेरित किया जिन्हें सुंदर किनारों और आकर्षक धारियों से सजाया जाता था। भारी कशीदाकारी की सजावट तथा विशुद्ध चांदी और रेशम ने मुगल प्रेरणा का संयोजन पश्चिमी प्रभाव के साथ किया।

1920 का दशक

पश्चिम में, इस दशक को 'गर्जनापूर्ण बीसवां दशक' कहा जाता था जिसकी मुख्य विशेषता फ्लॉपर शैली थी जिसने छरहरे स्तंभीय सिलुएट को लोकप्रिय बनाया। भारत में, इस रूझान को साड़ी–ब्लाउज में प्रतिबिंबित किया गया जहां उठी हुई सौम्य गर्दन की पंक्तियों के साथ लंबी आस्तीनों वाले ब्लाउजों में सेमी–फिटेड आयताकार आकृति का प्रचलन जारी रहा।

1930 का दशक

यह ट्रेंड 1930 के दशक में भी जारी रहा जहां साड़ी के पल्ले को या तो 'सीधा' रखा गया या फिर 'उल्टा'। गद्दीदार कंधों की पश्चिमी शैली उभरे हुए आस्तीनों वाले ब्लाउज के रूप में रूपांतरित हुई। इस युग में ऐसी फिल्में आईं जिन्होंने फिल्मी सितारों को जनता के लिए अनुकरण की प्रतिमूर्ति बना दिया था जिनकी प्रत्येक विशिष्ट शैली का जनता द्वारा पूरी आस्था के साथ अनुकरण किया जाता था। पहले–पहल सिनेमा के माध्यम से शानदार शिफॉन साड़ियां फैशन का प्रतीक बन गई जिन्हें समाज के उच्च वर्ग और फिल्मी सितारों द्वारा लोकप्रिय बनाया गया था। पहला फैशन शो 1930 में पुणे में आयोजित किया गया जब 'पोम्पेडोर गाउंस' के कैथरीन कोर्टनी ने यूरोपीय मॉडलों पर पश्चिमी पोशाकों का प्रदर्शन किया।

1940 का दशक

देशभक्ति में एक नए जोश के साथ मितव्ययिता संबंधी उपाय इस दशक की मुख्य विशेषताएं थीं। 1940 के दशक में महात्मा गांधी द्वारा पूर्ण स्वराज के आह्वान का उद्देश्य समूचे देश को एक करना था तथा लोगों द्वारा इस भावना का प्रदर्शन समस्त विदेशी सामग्रियों/कपड़ों को जलाकर किया गया। यह एक उल्लेखनीय संकेत था कि

पारंपरिक, मोटी, घर पर बुनी खादी जिसे 'चरखे' पर काता जाता था, मात्र एक वस्त्र ही नहीं थी, अपितु उस काल में भारतीय आत्मा का प्रतीक थी तथा साथ ही आत्मनिर्भरता, राष्ट्रवाद और ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीय विरोध का भी संकेत थी। साधारण रूप से मोड़ी गई गांधी टोपी के साथ खादी का कुरता, पजामा और धोती पहनी गई। इस वेशभूषा ने धर्म, वर्ण और जाति के समस्त विभेदों को भारतीय होने की एक सामूहिक पहचान में आत्मसात कर लिया। **कमलादेवी चट्टोपाध्याय** ने अपनी खादी की साड़ियों में भारतीय शालीनता को चरमोत्कर्ष तक पहुंचाया। सामान्यतः महिलाएं परंपरागत कमर की लंबाई तक सेमी–फिटेड ब्लाउजों के साथ साड़ियां पहनती थी जिनके कॉलर गर्दन तक ऊंचे अथवा बंद गले वाले होते थे, आस्तीनों की लंबाई तीन–चौथाई होती थी अथवा वे पूरी बाजू की लंबाई वाले होते थे।

स्वतंत्रता उपरांत की अवधि और 1950 का दशक

1947 के बाद, भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा भारतीय शैली के विवरणों की सीमाओं में विस्तार कर दिया गया। उन्होंने निरंतर अपने बेहतर रूप से सिले चूड़ीदार–कुरतों गांधी टोपी और बंद गले की कॉलर वाली जैकेट के साथ उत्कृष्ट शैली का प्रदर्शन किया जिसमें सीने पर एक गुलाब भी लगाया गया होता था। इसे 'नेहरू जैकेट' के नाम से जाना जाता था तथा इसने भारत में पुरुष परिधान फैशन को एक नई दिशा प्रदान की।

स्वतंत्रता के बाद का युग एक अत्यधिक उत्साहजनक मनोयोग लेकर आया जो 1950 के दशक में जारी रहा, जहां साड़ी–ब्लाउज ने पैटर्नों में अभिनवता के विशिष्ट संकेत दर्शाए। ब्लाउजों की लंबाई कम हो गई। 'कम' को अब शंकुओं और सीवनों के साथ एक पृथ्क टुकड़े में काटा जा सकता था। कशीदाकारी कांच की सामग्री, मोतियों और मालाओं के माध्यम से की गई सजावट ने ब्लाउजों को और भी आकर्षक बना दिया था।

भारतीय महिलाओं के पास अब दोहरा उत्तरदायित्व था, वे घर के काम–काज तथा घर के बाहर काम के बीच संतुलन स्थापित करती थीं। समय का इष्टतम प्रयोग करने के लिए उन्हें सलवार–कमीज अत्यधिक सुविधाजनक प्रतीत हुई। पंजाब में जन्मी इस पोशाक को स्थानीय और प्रांतीय प्रभावों के बावजूद एक स्वाभाविक पसंद के रूप में अपना लिया गया। इसे प्रारंभ में एक छोटी जैकेट अथवा बंदी तथा दुप्पटे के साथ पहना जाता था।

1960 का दशक

यह दशक स्ट्रीटवीयर की शुरूआत का दशक था जो उच्च स्तरीय फैशन तथा हिप्पियों जैसे वेशभूषा को अत्यंत लोकप्रिय बना देने के लिए मानो बेताब था। पश्चिम में मिनी स्कर्ट/परिधान घुटनों से ऊपर तक हो गए थे जिन्हें प्रायः घुटनों की ऊंचाई तक के बूटों के साथ पहना जाता था। इसके साथ–साथ ही सलवार–कमीज की लंबाई भी कम हो गई। शरीर के साथ लगे हुए निट टॉपों के साथ कसे हुए कपड़े तथा पुलओवर अब वेशभूषा का अभिन्न भाग बन चुके थे। हिन्दी फिल्मों ने समाज में उस समय प्रचलित फैशन की सच्ची तस्वीर पेश की। नायिकाएं चूड़ीदार पजामियों के साथ अत्यंत कसी हुई कमीजें पहनती थी जिनका स्थान नाथलोन की स्ट्रेच पैंटों तथा पारदर्शी सामग्री जैसे शिफॉन नेट अथवा नायलोन के दुप्पटों ने ले लिया।

साड़ी–ब्लाउजों के साथ–साथ गहरे रंग के वक्रीय मध्यच्छदों के लिए लालसा भी जारी रही। साड़ी के साथ पहने जाने वाले आस्तीन–विहीन ब्लाउजों के पिछली ओर महीन नेकलाइन अथवा बो पर सिली जा सकने वाली रेखाएं जिसके साथ छोटा पल्ला हुआ करता था अब फैशन में था जिसे कंधे के ऊपर अत्यंत लापरवाही के साथ फेंक दिया जाता था। नाभि के नीचे पहनी जाने वाली साड़ियां कमर के नीचे पहनी जाने वाली 'हिपस्टर' स्कर्टों और पैंटों के उद्भव का आधारिक संस्करण थीं। एक अन्य शैली थी – घुटनों से ऊपर लपेटी जाने वाली मिनी–साड़ी जो संभवतः इतनी अधिक आधुनिकता लिए हुई थी कि वह अत्यधिक लोकप्रिय फैशन विवरण नहीं बन पाई। हिन्दी फिल्मों ने पहली सिली हुई साड़ियों का पदार्पण किया जो चुनटों के साथ शरीर के आकार के अनुरूप तैयार की गई थी जिनका पल्ला अपने निश्चित स्थान पर होता था जिन्हें केवल अपने पर जिप से बंद ही करना होता था। जिप–ऑन साड़िया पार्टियों में पहने जाने के लिए अत्यंत पसंदीदा हो गई थीं क्योंकि उन्हें पहनने में काफी सुविधा हुआ करती थी। आकर्षक कपड़ा जैसे शिफॉन इन साड़ियों के लिए सर्वोत्तम था।

यदा–कदा लटों के साथ ऊंचा जूड़ा बनाए गए बाल, गहरा मेकअप की गई आंखें और पीत ओष्ठ इस वेषभूषा को पूर्ण बनाते थे।

यह दशक ऐसी पतलूनों का पर्याय है जिन्हें बैल–बॉटम' कहा जाता था जिनमें तड़क–भड़क के विविध परिणाम शामिल होते थे, जो एक ऐसी शैली थी जो आगामी दशक तक भी जारी रही। ढीली, सीधी, लंबाई की पतलून जिसका नाम 'पैरेलल्स' था जिसने आधुनिक चौड़े पौछों वाले पलाज़ो (ढीली सीधी पैंटों) पतलून का स्थान ले लिया था, भी उस समय फैशन में थी। भारतीय कमीजों को भी इन पैंटों के साथ पहना जाता था।

कुर्ते / कमीज के साथ लुंगी को भी पहना जाता था, जो शरीर पर लपेटी जाने वाली स्कर्ट थी चाहे वह आयताकार हो अथवा बड़े बेलनाकार आकार वाली जिसे किसी भी आकार वाले शरीर पर लपेटा जा सकता था। यह अनिवार्यतः सारोंग जैसी लपेटन हुआ करती थी जो न केवल प्राच्य देशों में दिखाई पड़ती थी बल्कि एक पारंपरिक पोशाक भी होते थे जिसे पश्चिम में सौराष्ट्र, दक्षिण में केरल तथा उत्तर में पंजाब में क्षेत्रीय विविधता के साथ शरीर पर लपेटा जाता था।

कमीजों और दुपट्टों के साथ पहने जाने वाले लखनवी शरारे और घाघरे औपचारिक पोशाक संहिता का भाग बन गए थे। एक अन्य लोकप्रिय परिधान था – राजस्थानी घाघरा–चोली जिसे उच्च वर्गों द्वारा विवाहों तथा अन्य पारंपरिक समारोहों में पहना जाता था। लंबी अथवा छोटी घाघरा स्कर्ट को विशिष्ट शैली की चोलियों और कुर्तियों के साथ पहना जाता था।

फेमिना द्वारा अनेक अंतर्राष्ट्रीय सौंदर्य प्रतियोगिताओं जैसे 1965 में आयोजित मिस यूनीवर्स, मिस वर्ल्ड और मिस एशिया की फ्रेंचाइजी प्राप्त करने के साथ ही, दिल्ली बेंगलूर, कलकत्ता और मद्रास में सौंदर्य प्रतियोगिताओं और फैशन शो का आयोजन किया गया।

1970 का दशक

यह ऐसा समय था जब जीवन–शैलियों और सौंदर्यबोध मूल्यों के टकराव के परिणामस्वरूप नई सामग्रियों और तकनीकों का प्रयोग सर्वत्र व्याप्त हो गया। प्लास्टिक प्राकृतिक सामग्रियों का स्थान ले लिया, कारखानों में उत्पादित सामग्रियों ने हस्तशिल्प की वस्तुओं का स्थान ले लिया। फिर भी, समस्त बाधाओं के बावजूद **कमला देवी चटोपाध्याय** और **पुपुल जायकर** जैसे दार्शनिकों के अथक प्रयासों के माध्यम से छेड़े गए एक मजबूत पुनरूद्धार आंदोलन ने वस्त्र शिल्प की विरासत को पुनर्जीवित कर दिया, जिन्होंने वस्त्र उद्योग को ऊर्जावान बनाने तथा शिल्पकारों के पारंपरिक शिल्प–कौशलों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक संस्थानों और संगठनों की स्थापना की। कुटीर उद्योग ने सरकार द्वारा समर्थित एक मजबूत अवसंरचना प्राप्त की। राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूलों को मान्यता प्रदान करने के माध्यम से किए गए पुनरूद्धार द्वारा वस्त्रों, परिधानों और उपांग डिजाइनरों का अभ्युदय हुआ। **रितु कुमार** फैशन के क्षेत्र की प्रारंभिक पुरोधा थीं जिन्होंने ब्लॉक प्रिंटों का व्यापक अनुसंधान किया तथा 'जरदोरी' कशीदाकारी की तकनीक का अभिनव अनुप्रयोग किया।

कूर्गी, शैली में साड़ी बांधने के अनेक मूलभूत विकल्प, जिनमें कंधों को आवृत्त छोड़ा जाता था, तितली शैली तथा लुंगी शैली देखे गए। सूत की साड़ियों के साथ कशीदाकारी किए गए बैकलैस ब्लाउज भी पहने जाते थे। 'चूड़ीदार कुरता' तथा 'सलवार–कमीज' दोनों ही समान रूप से लोकप्रिय थे जिनमें पजामों और सलवारों के 'पौंछे' अथवा गोटे की पंक्ति इतनी अधिक चौड़ी हो गई थी कि अनेक अवसरों पर उनके 'प्लेटफार्म' की हीलों पर फंस जाने का खतरा बना रहता था। दुपट्टे या तो मिलते–जुलते रंग में होते थे अथवा स्वयं 'सूट' के ही समान प्रिंट और रंग के हुआ करते थे।

1980 का दशक

वैश्विक तौर पर, गद्दीदार कंधों के साथ 'पावर ड्रेसिंग' एक विशिष्ट सिलुएट था जिसमें कमर को बेल्ट से कसकर बांधा जाता था तथा कूल्हे की लंबाई तक का पेपलम होता था। भारतीयों ने इसके जवाब में ऐसी कमीजें और टॉप्स बनाए जिनमें गद्दीदार कंधे होते थे तथा लेग ओ मटन अथवा फूली हुई आस्तीनें होती थीं जो कलाई तक जाते–जाते महीने हो जाती थीं तथा दोनों ही आस्तीनें सामान्यतः कंधों की चौड़ाई को और अधिक चौड़ा करती प्रतीत होती थीं। कमर पर बैल्ट बांधी जाती थी, उस पर चुनट डाली जाती थी या उस पर कमरबंद लगाया

जाता था। उसके नीचे 'धोती' पैंटें, ढक्कननुमा पैंटे, हरेम पैंटे अथवा 'पटियाला सलवार' डाली जाती थी।

स्वंतत्रता प्राप्ति के साथ पुनरूद्धार आंदोलन ने अपना वेग जारी रखा जिसमें सरकार द्वारा प्रायोजित परियोजनाएं भी शामिल थी तथा भारत की वैविध्यपूर्ण वस्त्र परंपरा और शिल्पकारी का प्रदर्शन करने और उसे प्रोत्साहित करने के लिए फैशन पुरोधाओं जैसे मार्तण्द सिंह द्वारा भारत और विदेशों में प्रदर्शनियां आयोजित की गईं। राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान के अत्यंत प्रतिभाशाली डिजाइनरों जैसे आशा **साराभाई, अर्चना शाह, डेविड अब्राहम** और राकेश ठाकुर (अब्राहम और ठाकुर) ने उनके वस्त्रों की गहन जानकारी के आधार पर अत्यंत विशिष्ट वैश्विक प्रासंगिक रूपरेखा के साथ अनेक उत्कृष्ट लेबलों का सृजन किया। **सत्य पॉल, हेमंत त्रिवेदी, जेम्स फरेरा, पल्लवी जयकिशन, अबू जारी** और संदीप खोसला (अबू और संदीप), **मोनापाली एवं रोहित खोसला, तरुण तहिलियानी, सुनीत वर्मा,** रवि बजाज, रोहित बल, रीना ढाका ऐसे डिजाइनरों में से एक थे, जिन्होंने उनके वस्त्रों को पहनने वाले मॉडलों के साथ–साथ अनेकों प्रशंसकों के दिलों पर राज किया।

1990 का दशक

इस दशक में अनेक प्रभावों का मिश्रण देखने को मिला जो एक ग्रहणशील मिश्रण था जिसमें फैशन, चमक–दमक और उच्च कोटि के फैशन की वापसी देखने को मिली। संचार के क्षेत्र में तेजी से होने वाले विकास के फलस्वरूप विश्व के किसी भी भाग में भी आयोजित होने वाले फैशन शो को उपग्रह द्वारा तत्काल ही प्रसारित किया जा सकता है। भारत में, "एफटीवी" और "ट्रेंड्स" जैसे टीवी चैनलों तथा "एमटीवी हाउस ऑफ फैशन" और "सीएनएन स्टाइल विद एल्सा क्लेश" जैसे कार्यक्रमों ने हमारे घरों तक नवीनतम फैशन को ला खड़ा कर दिया है। अतः एक ओर, शहरी उपभोक्ताओं के लिए एमटीवी पर स्टाइल आइकॉनों द्वारा यथानिर्देशित 'शांत' दिखने के लिए पश्चिमी वस्त्रों की जागरूकता और स्वीकार्यता है तथा वे उस विशिष्ट वर्ग के बीच बने रह सकते हैं जो 'गुंशी' पहनता है तथा 'लुइस ब्यूटॉन' बैगों का प्रयोग करता है। दूसरी ओर, अर्ध–औपचारिक तथा पारंपरिक अवसरों जैसे विवाहों और त्योहारों के लिए मानवीय पोशाकों की आवश्कयता है। ये उच्च मूल्य वाले "हॉटे कोट्यूर" (उच्च फैशन) परिधान न केवल अपने 'डिजाइनर' लेबर के लिए महंगे थे बल्कि कशीदाकारों के उच्च स्तरीय कौशलों तथा प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री की गुणवत्ता के लिए भी कीमती थे। जनता के संदर्भ में, एक समांतर प्रेट–ए–पोर्टर (पहनने के लिए तैयार) उद्योग का विकास हुआ जिसने बिक्री की मात्रा तथा मूल्यों में किफायत द्वारा मध्यम वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति की। इस दशक में ब्रांडों की शुरूआत भी हुई तथा डिपार्टमेंटल स्टोरों और एकल ब्रांड स्टोरों का अभ्युदय भी हुआ। लेबल/ब्रांड का संरक्षण करने के लिए अधिकाधिक उपभोक्ताओं को प्रेरित करने के प्रयोजनार्थ प्रेस प्रकाशनियों, सूची–पत्रकों, पत्रिकाओं, होर्डिगों और वीडियो विज्ञापनों के माध्यम से उनका व्यापक प्रचार प्रसार किया गया। फैशन शो, डिजाइनरों तथा साथ ही ब्रांड के प्रवर्तन के लिए प्रचार का प्रभावी माध्यम बन गए। अत्यंत मेधावी डिजाइनरों जैसे **रघुवेन्द्र राठौर, वेंडेल रॉड्रिक्स, अनामिका खन्ना, अकी नरूला, रोहित गांधी और राहुल खन्ना, मीरा और मुजफ्फर अली** ने भी विशिष्ट शैलियों के साथ अपने लेबल स्थापित किए।

भारतीय उपभोक्ता की क्रय शक्ति का लाभ उठाने के लिए **जांद्रा रोड्स (यूके), पिएरे कार्डिन (फ्रांस), इचिरो किमीजीमा और कंसई यामामोटो (जापान)** जैसे डिजाइनरों ने भारत में संवर्धनात्मक प्रदर्शन आयोजित किए। कुछ ब्रांडों जैसे पिएरे कार्डिन और ट्रेड लैपिडस ने भारत में अपने लेबलों की शुरूअता की परंतु वे अधिक समय तक सफलता अर्जित नहीं कर पाए।

वर्ष 1998 में **भारतीय फैशन डिजाइन परिषद (एफडीसीआई)** की स्थापना ने डिजाइनरों को व्यापार से संबंधित चर्चा करने और निर्णय लेने के लिए एक संगठित मंच प्रदान किया। वर्ष 2000 में आरंभ हुए **लैम्मे इंडिया फैशन वीक (एलआईएफडब्ल्यू)** अनेक डिजाइनरों को विशाल संख्या में दर्शक जिनमें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्रेता भी शामिल थे, उनके समक्ष अपने डिजाइन प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान किया। आज एलआईएफडब्ल्यू को बॉलीवुड फैशन को प्रदर्शित करने के एक मंच के रूप में माना जाता है। आज एफडीसीआई पहनने के लिए तैयार वस्त्रों के लिए द्विवार्षिक फैशन वीक, कोट्यूर वीक तथा दिल्ली में पुरुषों के लिए फैशन वीक का आयोजन करता है। **ब्राइडल एशिया** विवाह के परिधानों में उत्कृष्ट पोशाकों के निर्माणों को प्रदर्शित करता है।

1986 में राष्ट्रीय फैशन प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना के साथ ही नए डिजाइनरों की एक नई लहर ने भारत को विश्व मानचित्र पर दृढ़ता के साथ स्थापित कर दिया। **रितू बेरी, जे.जे. वालया, आशीष सोनी, नरेन्द्र कुमार अहमद, आशिमा सिंह (आशिमा-लीना) रन्ना, राजेश प्रताप सिंह, मनीष अरोड़ा, नम्रता जोशीपुरा, पूजा नयूयर सव्यसाची मुखर्जी, गौरव गुप्ता, निदा महमूद, पंकज और निधि** कुछ ऐसे नाम हैं जो समकालीन भारतीय फैशन के पर्याय बन गए हैं। प्रत्येक डिजाइनर का एक विशिष्ट सौंदर्यबोध और शैली है जिसे फैशन जगत द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। प्रत्येक लेबल मुख्य रूप से या तो भारतीय अथवा पश्चिमी शैली, महिलाओं अथवा पुरुषों के परिधानों, विस्तृत सतही पोशाकों अथवा पैटर्न वाली पोशाकों, साधारण अथवा अत्यंत तड़क–भड़क वाले परिधानों, आदि से संबधित है।

21वीं शताब्दी

डिजाइनरों की आगामी पीढ़ी अत्यंत सक्रिय व्यापार विदग्धता के साथ सृजनात्मकता और वाणिज्यिक व्यवहार्यता के बीच संतुलन स्थापित कर रहा है। कुछ डिजाइनर जैसे **अमित अग्रवाल, रिमझिम दादू, अल्पना नीरज** आधुनिक प्रौद्योगिकियों के साथ कार्य करते हैं तथा संरचना, सामग्री और तकनीकों के साथ प्रयोग करते हैं। **शिवान** और **नरेश** ने तैराकी की पोशाकों और रिसोर्ट परिधानों में अपना नाम स्थापित कियाहै। **अनीथ अरोड़ा (पेरो), राहुल मिश्रा** ने भारतीय वस्त्र विरासत और हस्तशिल्प पंरपराओं के पुनर्निर्वचन के माध्यम से अपनी स्वयं की शैली सृजित की है जिसमें उन्होंने सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ नृजातीय व्यापार प्रक्रियाओं का संतुलन स्थापित किया है। **सामंत चौहान** विशेष रूप से भागलपुर के वस्त्रों के साथ कार्य करते हैं। उमा **प्रजापति** (उपासना डिजाइन स्टूडियो) संधारणीय फैशन में गहन प्रतिबद्धता का निर्वाह करते हुए डिजाइन में समुदाय की सहभागिता को शामिल करती हैं जैसेकि सुनामिका परियोजना में किया गया है।

उदारीकरण की लहर से तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बाधाओं के कम होने के फलस्वरूप विश्व सिमट सा गया है। भारतीय बाजार को खोल दिएजाने से इस बात के प्रति जागरूकता बढ़ी है कि 'डिजाइन' पहले की तुलना में अधिक उल्लेखनीय भूमिका निभाएगा। अन्य देश भारत को एक बाजार के रूप में देख रहे हैं क्योंकि इसके उपभोक्ता आधार की क्षमता अत्यंत व्यापक है तथा उसमें क्रय शक्ति का अवयव भी शामिल है। परिधानों, वस्त्र–उपांगों, आभूषणों, फर्नीचर और जीवन–शैली से जुड़े अन्य उत्पादों में अनेक ब्रांडों के प्रवेश के फलस्वरूप भारतीय फैशन बाजार परिदृश्य प्रतिस्पर्धी, चुनौतीपूर्ण तथा रोमांचक हो गया है। विलासिता बाजार का उत्थान भारत में अरबपतियों की निरंतर बढ़ती हुई संख्या का द्योतक है। घरेलू कार्पोरेट ब्रांडों के साथ विदेशी लेबलों, हस्तशिल्कारी के अनूठे परिधानों के साथ व्यापार मात्रा में उत्पादित लेबलों का सह–अस्तित्व यह इंगित करता है कि ऐसे डिजाइनरों, वस्त्र और परिधान प्रौद्योगिकियों और व्यापारियों की आवश्यकता है जिनके पास योग्यता, उद्योग की गहरी समझ तथा फैशन व्यवसाय से संबंधित वृत्तिक अभिवृत्ति की आवश्यकता है।

जेजे वालया

आशीष सोनी

रितु बेरी

रन्ना

सोनम दुबाल द्वारा संस्कार

राजेश प्रताप सिंह

नम्रता जोशीप

रब्बानी और राखा

निदा महमूद

सव्यसाची मुखर्जी

अल्पना नीरज

पारस और शालिनी
द्वारा गीशा डिजाइन

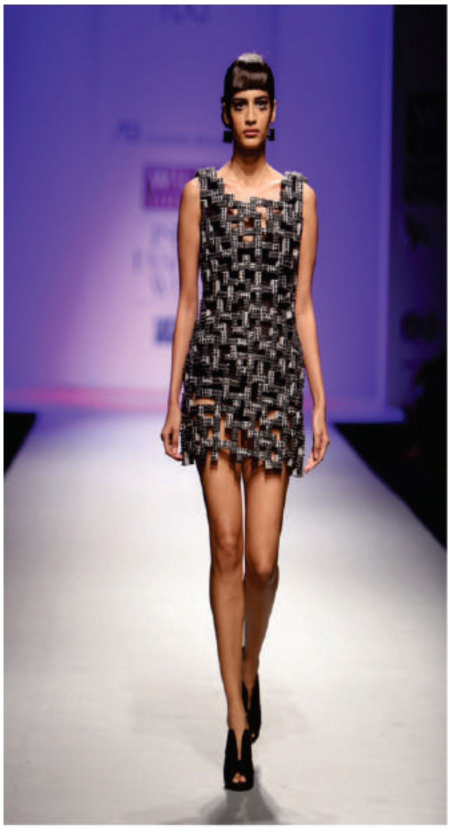

आनंद भूषण

पायल प्रताप सिंह

जय मिश्रा

अमित अग्रवाल द्वारा 'मोर्फी'

नीथ अरोड़ा द्वारा 'पेरो'

रिक्त स्थान भरिए:

1. दिल्ली में विल्स इंडिया फैशन वीक (डब्ल्यूआईएफडब्ल्यू) का आयोजन ____________ द्वारा किया जाता है
2. लेक्मे फैशन वीक ____________ शहर में आयोजित किया जाता है।
3. जो शो विवाह के परिधानों को दर्शाता है वह ____________ है।
4. विवाह के परिधानों को ____________ कहा जाता था।

सारांश

फैशन का व्यवसाय फैशन बाजार की गतिशीलता से प्रभावित होता है। यह फैशन के संचलन पर निर्भर करता है जो गति के संकेतकों को निर्दिष्ट करता है तथा भावी ट्रेंडों की दिशा से संबंधित है।

फैशन का पूर्वानुमान एक जटिल क्रियाकलाप है जिसके द्वारा फाइबर, यार्न, फैब्रिक और परिधान उत्पादकों तथा साथ ही खुदरा व्यापारियों के प्रयास समन्वित होते हैं। इसके लिए, भावी ट्रेंडों की पहचान करने तथा उनका पूर्वानुमान करने के लिए पिछले फैशन ट्रेंडों के अनुसंधान और विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

फैशन पेंडुलम स्विंग का अर्थ है – फैशन का आवधिक संचलन क्योंकि यह एक घड़ी की भांति एक पराकाष्ठा से दूसरी की ओर निरंतर गतिमान होता है। दो पराकाष्ठाओं के बीच डिजाइनर, पूर्वानुमान लगाने वाले, विनिर्माता और खुदरा–व्यापारी अग्रिम रूप से पेंडुलम के दोलन की परिकल्पना करने का प्रयास करते हैं ताकि आगामी फैशन ट्रेंड का पूर्वानुमान लगाया जा सके और परिधान की आगामी श्रृंखला की योजना तैयार की जा सके।

फैशन चक्र का आशय है उपभोक्ताओं के एक विशाल भाग द्वारा किसी विशेष शैली की स्वीकार्यता और उसे समाप्त किए जाने का सांकेतिक मार्ग। इसकी अनियमितता और विविधता अवधि, तरंगण और वेग के कारण होती है।

तीन मुख्य प्रकार के फैशन चक्र हैं – मनोयोग चक्र, मानक ट्रेंड चक्र, श्रेण्य ट्रेंड चक्र। इसके अलावा, चक्रों में भी चक्र निहित हैं, जो हैं – अवरोधित चक्र और आवर्ती चक्र।

फैशन संचलन के सिद्धांत ट्रेंडों के उद्भव, परिवर्तन की दिशा, फैशन के प्रवर्तकों और अनुयायियों के संबंध में प्रश्नों का समाधान करते हैं। इनका वर्णन सिद्धांतों में किया गया है जो हैं – ट्रिकल अप, ट्रिकल डाउन और ट्रिकल एक्रॉस सिद्धांत।

फैशन की प्रमुख शब्दावलियों जैसे ट्रेंड, संग्रहण, शैली, डिजाइन, कला, शिल्प, हाउटे कोट्यूर, प्रेट–ए–पोर्टर, एवांट गार्डे, परिमाण अथवा मात्रात्मक फैशन, नॉक ऑफ, सीमित फैशन, क्लासिक्स और फैड्स, आदि पाठ्यचर्या और वृत्तिक कारणों के लिए आवश्यक है।

उपभोक्ता की जनसांख्यिकी और मनोवैज्ञानिक–विश्लेषण एक विविधतापूर्ण बाजार का सृजन करते हैं जिसके लिए फैशन परिधान की विभिन्न श्रेणियों की आवश्यकता होती है जो पुरुषों, महिलाओं और बच्चों के लिए विभिन्न अवसरों और मूल्य–बिंदुओं की पूर्ति करते हैं।